भगवान बाहुबली

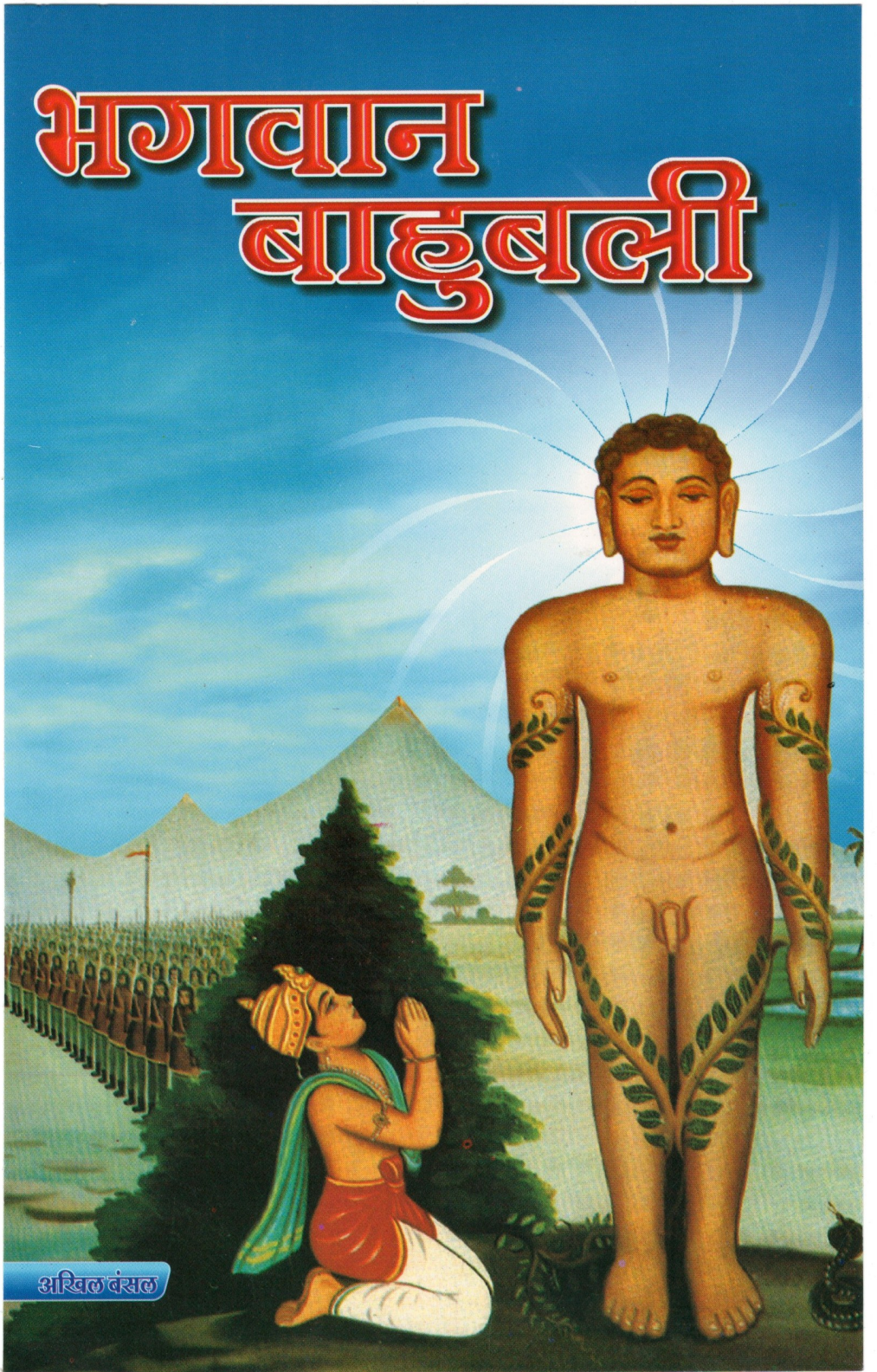

अखिल बंसल

बाहुबली प्रकाशन ग्रन्थमाला का चतुर्थ पुष्प

भगवान बाहुबली

लेखक :

अखिल बंसल

एम.ए. (हिन्दी), डिप्लोमा-पत्रकारिता

प्रकाशक :

समन्वय वाणी जिनागम शोध संस्थान

129, जादोन नगर 'बी', स्टेशन रोड़, दुर्गापुरा जयपुर

फोन : (0141) 2722274 मोबाईल : 09314515197

प्रथम संस्करण : 2000
(6 सितम्बर 1997)
द्वितीय संस्करण : 1000
(13 नवम्बर 2007)
योग : 3000

मूल्य : 10 रुपया

प्राप्ति स्थान :
समन्वय वाणी फाउण्डेशन
129, जादोन नगर 'बी'
दुर्गापुरा, जयपुर – 302018

मुद्रक :
प्रिन्टोमैटिक्स
स्टेशन रोड़, दुर्गापुरा, जयपुर
फोन : 2722274, 9314515197

प्रकाशकीय

समन्वय वाणी जिनागम शोध संस्थान के माध्यम से चतुर्थ पुष्प के रूप में भगवान बाहुबली का सम्पूर्ण चित्रमय कथानक प्रकाशित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

भगवान बाहुबली एक इतिहास पुरुष हैं। वे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र एवं चक्रवर्ती सम्राट भरत के लघुभ्राता थे। अपने स्वाभिमान एवं राज्य रक्षा का दायित्व निर्वाह करने के लिए उन्हें अपने बड़े भाई से द्वन्द करना पड़ा जो उनके वैराग्य का प्रमुख कारण बना। उन्होंने राजपाट त्यागकर जिनदीक्षा ले ली और तपस्वी जीवन व्यतीत किया। वे केवलज्ञान प्राप्त कर सर्वप्रथम मोक्षगामी हुए।

भगवान बाहुबली की रोचक गाथा को समन्वय वाणी (पाक्षिक) पत्र के यशस्वी सम्पादक श्री अखिल बंसल ने बड़े ही रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। चित्रों को स्थान–स्थान पर देने से कृति में रोचकता आ गई है। आशा है बच्चों के ज्ञानवर्द्धन में यह कृति विशेष सहयोगी रहेगी।

आप सभी भगवान बाहुबली के सदृश्य त्यागमय जीवन अपनाकर आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें इसी भावना के साथ –

बाहुबली जैन, मथुरा
अध्यक्ष

भगवान बाहुबली

(1)

इस भरतक्षेत्र में भोगभूमि की अवस्था बदलने एवं कर्मभूमि की व्यवस्था प्रारम्भ होने पर चौदह कुलकर हुए हैं। इनमें अन्तिम कुलकर राजा नाभिराय थे, जो अपनी पत्नी मरुदेवी के साथ अयोध्या में राज्य करते थे। उनके यशस्वी पुत्र का नाम था – ऋषभदेव, जो न्यायप्रिय एवं कुशल प्रशासक के रूप में विख्यात हुए।

राजा ऋषभदेव के राज्य में प्रजा बड़ी सुखी थी। उनकी यशस्वती और सुनन्दा दो रानियाँ थीं। बड़ी रानी यशस्वती से भरत आदि सौ पुत्र तथा ब्राह्मी नामक कन्या

उत्पन्न हुई। जबकि छोटी रानी सुनन्दा से बाहुबली पुत्र और सुन्दरी नामक कन्या उत्पन्न हुई।

महाराजा ऋषभदेव की सभी सन्तानें योग्य तथा गुणवान थीं। उन्होंने बड़े पुत्र भरत को अर्थशास्त्र एवं नृत्यशास्त्र की शिक्षा दी, वृषभसेन को गंधर्वशास्त्र तथा अनन्तविजय को चित्रकला में पारंगत किया। बाहुबली को कामशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, रत्नपरीक्षा, अश्वपरीक्षा, हस्तपरीक्षा आदि में निष्णात किया। अन्य पुत्रों को भी योग्य धनुर्विद्या, शिल्प, वाणिज्य आदि शिक्षा प्रदान की। दोनों पुत्रियों में ब्राह्मी को लिपि विद्या तथा सुन्दरी को अंक विद्या की शिक्षा देकर उन्हें पारंगत किया।

यही नहीं राजा ऋषभदेव ने अपनी प्रजा को भी असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प आदि अनेक कलाओं का ज्ञान कराया। प्रजाजन उन्हें युग सृष्टा, प्रजापति, आदिब्रह्मा तथा विधाता आदि नामों से पुकारने लगी।

(2)

समय बीतता गया एक दिन राजा ऋषभदेव की राजसभा में नीलांजना नामक अप्सरा का नृत्य हो रहा था। सभो सभासद भाव-विभोर हो नृत्य देखने में मग्न थे। अचानक नीलांजना के पैर डगमगाए और वह धड़ाम से गिर पड़ी। चूंकि उसकी आयु समाप्त हो गई थी अतः देवेन्द्र ने तत्काल अपनी माया के बल से हूबहू वैसी ही नृत्यांगना को खड़ा कर दिया। नई नृत्यांगना ने ऐसा अभिनय किया मानो वह गिर पड़ी हो और उठकर दुबारा नृत्य करने लगी हो। नृत्य तो

यथावत चलता रहा, परन्तु राजा ऋषभदेव की आँखों से कुछ भी छिपा नहीं रह सका। जीवन की यह नश्वरता देखकर ऋषभदेव विचलित हो उठे। अब उनका मन राजपाट से दूर हो गया। संसार की अनित्यता ने उन्हें झकझोर डाला। संसार से विरक्त हो वे सोचने लगे –

'जैसे नीलांजना का शरीर विनाशी था, वैसे ही ये सब भोगोपभोग भी अस्थाई हैं। ये आभरण केवल भाररूप हैं; चन्दन का लेप मैल के तुल्य है। नृत्य पागल पुरुष की चेष्टा है और गीत संसार की करुण दशा का रुदन है।'

अब तो राजा ऋषभदेव से नहीं रहा गया। उन्होंने राजपाट त्यागकर तपश्चरण करने का दृढ़संकल्प ले लिया। ज्येष्ठ पुत्र भरत को अयोध्या तथा युवराज बाहुबली को

पोदनपुर का राज्य सौंपकर अन्य पुत्रों को भी राज्य का बंटवारा कर दिया और निर्भार होकर अपने पिता नाभिराय से दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी। माता– पिता ने उन्हें खुशी-खुशी वन गमन की आज्ञा प्रदान की और शीघ्र ही भव का अभाव करने का आशीर्वाद दिया।

ऋषभदेव ने सर्वस्व त्यागकर वैराग्य धारण कर लिया और नग्न दिगम्बर मुनि बन गए। छह माह तक लगातार घोर तपश्चरण किया और फिर हस्तिनापुर के लिए विहार किया। यहाँ राजा श्रेयांस ने उन्हें अक्षयतृतीया के दिन इक्षुरस का आहार दिया। एक हजार वर्ष मुनि अवस्था में व्यतीत करने के पश्चात् उन्हें कैवल्य की प्राप्ति हुई। कैवल्य अर्थात् दिव्यज्ञान प्राप्त हो जाने के पश्चात् वे अपने समवशरण सहित विचरण कर धर्मोपदेश देने लगे।

(3)

जिस दिन मुनिवर ऋषभदेव को कैवल्य की प्राप्ति हुई उसी दिन राजर्षि भरत को तीन शुभ समाचार प्राप्त हुए। धर्माधिकारी ने आकर महाराज भरत को सूचित किया कि ऋषभदेव को कैवल्य

की प्राप्ति हो गई है; आयुधशाला के रक्षक ने आकर बताया कि आयुधशाला में चक्ररत्न की प्राप्ति हुई है और उसी समय दासी कंचुकी ने पुत्रोत्पत्ति का शुभ समाचार महाराज भरत को सुनाया।

महाराज भरत विचार करने लगे कि मुझे धर्म पुरुषार्थ, अर्थ पुरुषार्थ और काम पुरुषार्थ का फल एक साथ प्राप्त हुआ है; पहले मुझे किसका उत्सव मनाना चाहिए। विचारों में खोए हुए भरत को धर्म पुरुषार्थ अधिक महत्त्वपूर्ण लगा अतः वे अपने सभासदों सहित ऋषभदेव की वंदना करने निकल पड़े। समवशरण में पहुँचकर उन्होंने भगवान ऋषभदेव की विधिवत् पूजा-अर्चना की। अयोध्या लौटकर महाराज भरत ने शस्त्रागार में जाकर चक्ररत्न की पूजा की और फिर पुत्र का जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया। इस पुनीत प्रसंग पर उन्होंने दिल खोलकर दान दिया। इसी बीच उनके लघु भ्राता वृषभसेन का मन भी विरक्त हो गया और उन्होंने ऋषभदेव से जिनदीक्षा ले ली। बाद में वे ऋषभदेव के प्रथम गणधर बन गए।

अब जबकि महाराज भरत को चक्ररत्न की प्राप्ति हो गई तब उनके मन में चक्रवर्ती बनने की तीव्र आकांक्षा जाग उठी। इसके लिए उन्हें देश के अन्य राजाओं को जीतना आवश्यक था अतः मंत्रियों से सलाह मशविरा कर उन्होंने सेना को संगठित किया और फिर दिग्विजय के लिए निकलने से पूर्व माँ का आशीर्वाद लेने उनके महल की ओर चल पड़े।

राजमाता यशस्वती पुत्र की अगवानी करने द्वार पर आ गईं। माता के चरणों में झुकते ही महाराज भरत के नेत्र सजल हो गए। अश्रुधारा ने राजमाता के चरण पखार दिए।

दिग्विजय हेतु मंगल प्रस्थान के अवसर पर अश्रुधारा अमंगल की द्योतक होती है ऐसा सोचकर राजमाता ने कहा – क्या मैं आँखों में आए इन आंसुओं का कारण जान सकती हूँ ?

भरत ने रुंधे गले से कहा – माँ ! जब मैं युद्ध के मैदान में करो या मरो के द्वन्द में उलझा होऊँगा तब मेरे अन्य भाई समवशरण में भगवान ऋषभदेव की दिव्यध्वनि सुनकर आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने की ओर अग्रसर होंगे। ऐसा विकल्प मन में बार-बार आ रहा है। सभी भाई कितने भाग्यशाली हैं उनकी तुलना में क्या मैं अभागा नहीं हूँ जो दिव्यध्वनि के लाभ से वंचित युद्धभूमि में रणकौशल दिखाकर राजनीति की चौसर पर अपने मोहरे चल रहा होऊँगा।

माता यशस्वती ने बेटे की बात मनोयोगपूर्वक सुनी और बोलीं – बेटे ! मैं तेरे मन की टीस भलीभांति समझती हूँ। मेरा भरत छह खण्डों का चक्रवर्ती सम्राट बने और अखण्ड भारत पर साम्राज्य करे मेरी तो यही लालसा है। चक्रवर्ती सम्राट भरत की आंखों में आंसू शोभा नहीं देते। अमंगलकारी इन आंसुओं को पोंछ डालो और अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ो। भरत आंसू पोंछते हुए माँ से गले मिले और युद्ध के लिए निकल पड़े।

(4)

महाराजा भरत की विशाल सेना के आगे किसी भी राजा का टिक पाना सहज नहीं था। पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक अनेक छोटे-मोटे राजाओं ने रक्तपात करना उचित नहीं समझा। उन्होंने भरत की सुदृढ़ सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर अधीनता स्वीकार करने में ही भलाई समझी। अनेक राजाओं ने बहुमूल्य वस्तुएं भरत के चरणों में अर्पित कर उन्हें अपना शासक स्वीकार कर लिया। किसी भी राजा ने प्रतिरोध करने का साहस नहीं किया। चारों ओर महाराजा भरत की विजय दुंदुभी बज रही थी। इसप्रकार पृथ्वी के छह भागों और दसों दिशाओं के राजाओं को जीतकर सम्राट भरत अपनी सेना सहित अयोध्या की ओर वापस लौट पड़े।

दिग्विजय ने भरत को अभिमानी बना दिया। वे सोचने लगे – 'मेरे जैसा शूरवीर इस पृथ्वी पर न तो अब तक पैदा हुआ है, न वर्तमान में है और न भविष्य में होगा। आखिर मेरा

सामना करने वाला है कौन इस दुनियाँ में ? सारे जगत का स्वामी मैं हूँ, क्योंकि मैं चक्रवर्ती जो ठहरा।'

(5)

वृषभांचल पर्वत के निकट सेना का पडाव था। रात्रि को विश्राम करते समय चक्रवर्ती भरत सोचने लगे क्यों न अपनी पराक्रम गाथा इस बृषभांचल गिरी के शिखर पर प्रस्तरखण्ड में स्थायी रूप से अंकित कर दूँ जिससे युगों-युगों तक मेरी यशगाथा लोगों की स्मृति में बनी रहे। ऐसा विचारकर वह प्रातः बृषभांचल के शिखर पर जा पहुँचे। वहाँ के प्रस्तरखण्डों को देखकर वे स्तब्ध रह गए। सम्पूर्ण पर्वत शिखर पर किंचित् भी खाली स्थान नजर नहीं आया जहाँ वे अपना नाम लिख सकते। एक से एक बढ़कर पराक्रमी सम्राट आए और दिग्विजय प्राप्तकर अपनी यशगाथा पर्वत शिखर के प्रस्तरों पर खुदवाकर अपने आपको अद्वितीय मान बैठे। सम्राटों की यश गाथाओं से पटे इस पर्वत शिखर पर वे दूर- दूर तक निहारते रहे। उनका अभिमान तो चकनाचूर हो गया, लज्जित भी हुए पर दिग्विजय की यशगाथा लिखने के व्यामोह से वे दूर न रह सके। एक प्रस्तर खण्ड से उन्होंने कुछ नाम मिटाए और अपनी विजयगाथा की प्रशस्ति लिखवाकर मायूसी का भाव लिए वापस लौट आए।

(6)

विजयश्री प्राप्त कर चक्रवर्ती सम्राट भरत अपनी विशाल सेना के साथ अयोध्या नगरी वापस आ गए। सम्पूर्ण नगर में विजय पर्व मनाने की तैयारी चल रही थी, परन्तु शहर के

मुख्य द्वार पर आकर चक्र रुक गया। मानो कह रहा हो, राजन् विजय अभी अधूरी है। चक्र के रुकने से सभी को आश्चर्य हुआ, राजेश्वर भरत भी चिन्ता में पड़ गए। राजपुरोहित को बुलाया गया, प्रमुख दरबारी भी उपस्थित थे। सभी ने विचार–विमर्श के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला कि महाराज भरत की विजय अभी अधूरी है। उन्होंने अन्य राजाओं को तो जीत लिया पर स्वयं के भाईयों को जीतना अभी बाकी है। जब तक वे भाईयों पर विजय प्राप्त नहीं कर लेते, चक्रवर्ती नहीं हो सकते।

भरत ने महामंत्री को आदेश दिया – सभी भाईयों के पास तुरन्त दूत भेजे जावें; अब केवल भरत ही इस पृथ्वी का

शासक है। सभी भाइयों को मेरे चक्रवर्तीपने की अनुमोदना कर शरणागत होना चाहिए। दूत के साथ लिखित संदेश भेजा गया। संदेश में लिखा था – 'यह साम्राज्य मात्र मेरे उपयोग के लिए नहीं है, तुम सबको भी इसका उपयोग करना चाहिए। परन्तु मैं आप सबमें ज्येष्ठ हूँ, बड़ा भाई पिता

के समान होता है। हम सब मिलकर साथ रहेंगे और राज्य सुख भोगेंगे। तुम सब मेरा राज्य शासन स्वीकार कर शरणागत हो जाओ।'

दूत का संदेश सुनकर भरत के सभी सगे भाई एकत्र हुए। भ्राता भरत के संदेश ने उन्हें विचलित सा कर दिया। उनके समक्ष मान-अपमान, यश–अपयश की बात तो थी ही इन सबसे बढ़कर भाई-भाई के संबंध का सवाल। सबने सोचा – 'यह तो सत्य है कि बड़ा भाई पिता के समान होता है अतः ज्येष्ठ भ्राता के रूप में उन्हें नमस्कार तो किया जा सकता है, परन्तु राजा और सेवक का भाव आ जाने से शरणागत होना कठिन है। पिता के द्वारा प्राप्त भूमि के लिए हम सेवक तो कदापि नहीं बनेंगे। परन्तु क्या राज्य के लिए भाई-भाई में युद्ध श्रेयस्कर होगा ? कुछ सूझ नहीं रहा था क्या किया जाए।' अतः सभी ने ऋषभदेव के समक्ष जाकर निर्णय करने का दृढ़ निश्चय किया और दूतों को सम्मानित कर उन्हें विदा किया।

(7)

सभी 99 भाई भगवान ऋषभदेव के समवशरण में पहुँचकर प्रभु की वंदना करते हैं और जिनदीक्षा लेने की भावना भाते हुए सभी

वस्त्राभूषण का त्यागकर नग्न दिगम्बर मुनि के रूप में दीक्षित हो जाते हैं।

सभी भाईयों के दीक्षा लेने के समाचारों से सम्राट भरत हतप्रभ रह जाते हैं। जब सगे भाइयों ने मेरी अधीनता स्वीकार नहीं की और जिनदीक्षा ले ली तब बाहुबली जैसा स्वाभिमानी तो मेरी आधीनता कभी स्वीकार नहीं कर सकता, ऐसा विचार बार-बार भरत के मन में कौंधने लगा। अब उन्हें बस यही चिन्ता सता रही थी कि बाहुबली को रास्ते पर कैसे लाऊँ, वह मेरा आधिपत्य कैसे स्वीकार करेगा। जैसे भी हो यदि शालीनता से वह नहीं मानता तो फिर दण्ड प्रयोग तो अन्तिम शस्त्र है ही – ऐसा विचार कर निपुण राजदूत दक्षिणांक को रत्नाभरणों के साथ पोदनपुर बाहुबली के समक्ष भेजा।

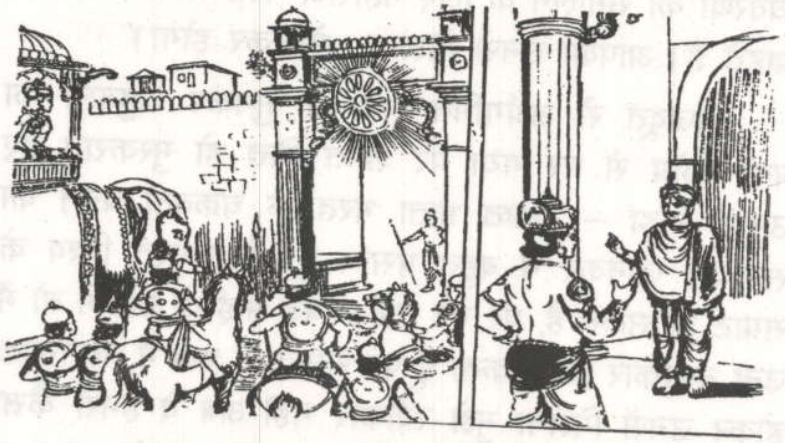

पोदनपुर पहुँचकर राजदूत दक्षिणांक ने बाहुबली की सभा में प्रवेश किया। वैसे तो बाहुबली को सभी समाचार

अपने गुप्तचरों से समय-समय पर मिलते ही रहे, परन्तु बिना पूर्व सूचना के भरत के राजदूत दक्षिणांक का दरबार में आना विस्मयकारी लगा। फिर भी भरत की कुशलक्षेम पूछते हुए दरबार में आने का कारण पूछा। राजदूत दक्षिणांक तो बाहुबली के दर्शन करते ही अवाक् रह गया, पहली बार जो देखा था उन्हें। सोचने लगा – सम्राट भरत से भी अधिक तेजस्वी लगते हैं बाहुबली ! शरीर से भी बलिष्ठ और पराक्रमी दिखाई दे रहे हैं। अचानक तंद्रा सी भंग हो गई जब बाहुबली ने आने का कारण पूछा। हिचकिचाते हुए राजदूत दक्षिणांक ने कहा –

'महाराज ! आपके ज्येष्ठ भ्राता भरत दिग्विजय कर चक्रवर्ती बन गए हैं। सभी राजाओं ने उनका आधिपत्य स्वीकार कर लिया है। इतने विशाल राज्य की शासन व्यवस्था को संभालने के लिए महाराज भरत आपका सहयोग चाहते हैं। आपका उनसे मिलना श्रेयस्कर होगा।'

राजदूत से अर्थगर्भित समाचार सुनकर बाहुबली का मन क्रोध से भर गया पर शान्त चित्त हो मुस्कराते हुए उन्होंने कहा – 'ज्येष्ठ भ्राता भरत के चक्रवर्ती बनने का समाचार जानकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। वे समस्त विश्व के सम्राट हो सकते हैं, पर मेरे नहीं। बड़े भाई के रूप में तो मैं उन्हें नमस्कार कर सकता हूँ पर सम्राट के रूप में नतमस्तक होकर उनसे मिलना मुझे स्वीकार नहीं अब वे हमसे कैसा सहयोग चाहते हैं ? पिताश्री से प्राप्त पोदनपुर के राज्य का स्वामी मैं हूँ और रहूँगा। मैं उनका आधिपत्य स्वीकार नहीं

कर सकता। अगर उन्हें अपने बल का अभिमान है तो जाकर कह दो – मैं भी युद्ध से नहीं डरता।'

राजदूत दक्षिणांक ने नाना प्रकार से समझाने की कोशिश की और कहा – 'हे स्वामी ! हम तो मात्र दूत हैं, स्वामी की आज्ञा के पालक हैं। हे आर्य पुत्र ! चक्रवर्ती भरत ने जो संदेश भेजा है उसे बिना तर्क-वितर्क के स्वीकार कर लेना चाहिए।'

बाहुबली ने गंभीर होकर उत्तर दिया – 'दक्षिणांक तुम अपने स्वामी के प्रयोजन को सिद्ध करने में बहुत चतुर हो इसीलिए भरत ने तुम्हें मेरे पास भेजा है, लेकिन मैं तुम्हारी चतुराई पूर्ण बातों में किंचित् भी आने वाला नहीं हूँ।'

'स्वामिन् ! मेरे वचनों का आप अन्यथा अर्थ न लें। भरत जी आपके बड़े भाई हैं, जो पिता के समान पूज्य हैं। उन्हें नमस्कार करने में तथा उनसे सौहार्द से मिलने में आप इतनी

सकुचाहट कर रहे हैं, जो मेरी समझ से उचित नहीं है।' दक्षिणांक ने पुनः समझाने की कोशिश करते हुए कहा।

दूत की हठधर्मिता और अति साहस को नजर अंदाज करते हुए गंभीर होकर बाहुबली ने अन्तिम बार समझाने का प्रयास किया और कहा –

'दक्षिणांक ! तेरे स्वामी को देश के समस्त राजाओं ने रत्नों की बहुमूल्य राशि से तौला है अतः भरत को 'तुला पुरुष' कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। आखिर भरत पिताश्री द्वारा दिए गए राज्य को हमसे छीनना क्यों चाहता है। उसकी इस लोभवृत्ति को तिरस्कृत करने के अलावा मेरे पास अब कोई रास्ता नहीं है।'

'इसका अर्थ है आप संधि नहीं चाहते।'

तुमने ठीक समझा दूत बाहुबली ने कहा – 'जाओ ! भरत से कह दो बाहुबली की सबल भुजाएँ रणभूमि में ही चक्रवर्ती भरत के चक्ररत्न की परीक्षा करेंगी। अब तो युद्ध की कसौटी से ही पराक्रम की परख होगी।'

बाहुबली का संदेश लेकर दक्षिणांक तत्काल अयोध्या लौट आता है।

राजदूत दक्षिणांक ने अयोध्या लौटकर सारा वृत्तान्त सम्राट को सुनाया। सुनते ही भरत क्रोध से

आग-बबूला हो गए। कुपित होकर उन्होंने मंत्रियों को आज्ञा दी – 'हमारी दिग्विजय विश्व विजय है परन्तु बाहुबली को पराजित किए बिना यह दिग्विजय अधूरी रहेगी। भाई-भाई में युद्ध उचित तो नहीं, पर अब किया ही क्या जा सकता है। बाहुबली महाबली तो है ही पर महाअभिमानी भी है। वह मेरा आधिपत्य स्वीकार करने को कदापि तैयार नहीं। अतः अब युद्ध के अतिरिक्त कोई उपाय शेष नहीं। जाओ और युद्ध की तैयारी करो।'

समस्त मंत्रीगण, सेनापति, राजपुरोहित आदि वरिष्ठ लोग नमस्कार कर निवेदन करते हैं –

महाराजाधिराज ! सेना तैयार है। आपका रथ तथा विश्वासपात्र हाथी 'विजय' आपकी बाट जोह रहे हैं। कृपया मांगलिक क्रिया कर युद्ध के लिए कूच कीजिए।

(8)

विशाल सेना पोदनपुर की दिशा में आगे बढ़ चली। सम्राट भरत की जय–जयकार के नारों से आकाश गुंजायमान हो रहा था। सबसे आगे चक्ररत्न अपनी आभा बिखेर रहा था। सेनानायकों के दौड़ते रथ एवं घोड़ों की टापों ने वातावरण को अशान्त बना दिया था।

पोदनुपर के निकट बाहुबली पहले से ही अपन चतुरंगी सेना के साथ मोर्चा सम्हाले हुए थे। दोनों ओर की सेना आमने-सामने आ डटी। दोनों सेनाओं के सेनानायक एवं मंत्रिगणों के चेहरों पर विस्मय के भाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहे थे तथा सभी भयभीत नजर आ रहे थे। दोनों पक्षों के मंत्रिगण एकत्रित होकर युद्ध टालने के अन्तिम प्रयास में तल्लीन होकर विचार विमर्श करने लगे।

भरत और बाहुबली दोनों ही महाप्रतापी तथा चरमशरीरी हैं, युद्ध में इनका तो कुछ बिगड़ने वाला है नहीं। हाँ युद्ध में अनगिनत सैनिकों का संहार अवश्य हो जायेगा। क्या इस युद्ध में प्राणी हिंसा को रोका नहीं जा सकता, क्या इसे धर्मयुद्ध के रूप में नहीं लड़ा जा सकता। क्या अधर्म और अपयश से बचा नहीं जा सकता। आदि नानाप्रकार के विचार मंत्रियों ने रखे।

आखिर गम्भीर मंथन के पश्चात् रास्ता निकल ही आया। सर्वसम्मति से यह तय किया गया कि दोनों पक्षों के

मंत्रीगण अपने-अपने स्वामियों को समझावें ताकि खून खराबा न हो और उन्हें धर्मयुद्ध के लिए तैयार करें। इससे जय-पराजय का भी निर्णय हो जायेगा और असंख्यात लोगों की जनहानि से भी बचा जा सकेगा।

अपने-अपने खेमों में जाकर मंत्रियों ने भरत बाहुबली को समझाया और कहा – 'स्वामिन् ! इस युद्ध में हिंसा का ताण्डव नृत्य होगा यदि इस हिंसक युद्ध के बदले आप अहिंसक युद्ध के लिए राजी हों तो अधिक श्रेयस्कर होगा। क्यों न आप दोनों भाई दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध, मल्लयुद्ध करने का फैसला कर लें। इन तीनों युद्धों में जो जीतेगा उसे ही सर्वाधिक बलशाली मानकर विजयी घोषित कर दिया जाए।

मंत्रिगणों द्वारा सुझाया गया यह रास्ता अहिंसा का रास्ता था। अपयश से भी बचने का यही मार्ग था अतः अनमने भाव से दोनों भाई इस धर्मयुद्ध के लिए तैयार हो गये। इसप्रकार भरत बाहुबली के सैनिकों में युद्ध नहीं हुआ और प्रचण्ड हिंसा टल गई।

(9)

दोनों ओर की सेनाओं के बीच धर्मयुद्ध की तैयारी होने लगी। भरत बड़ा भाई होने पर भी कद में बाहुबली से छोटे थे। भरत की लम्बाई 500 धनुष प्रमाण और रंग सुनहरा था जबकि बाहुबली की लम्बाई 525 धनुष प्रमाण और रंग हरा था।

धर्मयुद्ध प्रारंभ करने की घोषणा की गई। सर्वप्रथम दृष्टि युद्ध होना था। इसमें दोनों को एक-दूसरे की आँखों में आँखें डालकर एकटक देखना था, जिसकी पलक पहले झपक जायेगी उसे हार स्वीकार करनी थी। दृष्टि युद्ध का बिगुल बज उठा। दोनों एक दूसरे को एकटक घूर-घूरकर देखने लगे। परन्तु किसी की आँखें नहीं झपकी। चूंकि बाहुबली भरत से लम्बे तो थे ही अतः भरत को बाहुबली की आँखों से आँखें मिलाने के लिए आँखों को ऊपर उठाना और गर्दन को पीछे की ओर झुकाना पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि थोड़ी ही देर में भरत परेशान हो गये, उनकी गर्दन दुखने लगी और आँखें झपक गईं। इसप्रकार दृष्टि युद्ध में भरत पराजित हो चुके थे।

इसके पश्चात् दोनों भाई जलयुद्ध के लिए तालाब में कूद पड़े। वे दोनों एक दूसरे के ऊपर तेजी से जल फेंक रहे थे परन्तु बाहुबली जहाँ पानी के थपेड़ों को अडिग होकर सहते रहे वहीं भरत बाहुबली द्वारा तेजी से उछाले गए पानी के थपेड़ों को सहन नहीं कर सके अतः जलयुद्ध में भी उन्हें हार का सामना करना पड़ा।

सबसे अंत में हुआ मल्लयुद्ध। भरत-बाहुबली दोनों ही मल्लयुद्ध में निपुण थे, दोनों का अभ्यास भी अच्छा था। सभी सभासद हृदय थामकर इस अन्तिम निर्णायक युद्ध को आतुर दृष्टि से देख रहे थे। भाई-भाई मल्लयुद्ध में तल्लीन होकर अपने-अपने दांव पेच से एक दूसरे को चित्त करने का प्रयास कर रहे थे। कभी भरत बाहुबली पर झपटता तो कभी बाहुबली भरत को पटखनी देने का प्रयास करते। लड़ते-लड़ते दोनों थककर चूर हो गये। अचानक बाहुबली ने फुर्ती से दांव घुमाया और भरत को कमर से पकड़कर अपनी दोनों भुजाओं से सिर के ऊपर उठा लिया। अब भरत को पटककर उसे चित्त करना बाहुबली के लिए बहुत ही आसान हो गया पर बड़े भाई का मान ध्यान में आते ही बाहुबली ने कहा – 'तुम्हें एक क्षण में चित्त कर सकता हूँ, घुमाकर कहीं भी फेंक सकता हूँ लेकिन मैं तुम्हारा अनुज हूँ अतः सदैव प्रयास करूँगा, तुम्हें भूमि पर नहीं गिरने दूँगा आदर के साथ कंधे पर बिठाऊँगा।' यह कहते हुए बाहुबली ने भरत को कंधे पर बिठा लिया। चारों ओर बाहुबली के जयकारों से आकाश गूंज उठा।

(10)

भरत के मंत्री और सभासदों का लज्जा से सिर नीचा हो गया। भरत अपनी हार के अपमान को सह पाने में कठिनाई अनुभव कर रहे थे। अचानक उन्हें जाने क्या सूझा, चक्र का आह्वान किया और उसे बाहुबली को समाप्त करने की आज्ञा दी।

अब बाहुबली मेरे इस वार से बच नहीं सकता, मैं उसका संहार अवश्य करूँगा। यह मेरा अन्तिम शस्त्र है। चक्र सूर्य के समान प्रज्वलित हुआ और वेग से बाहुबली की ओर बढ़ा। सभी सभासद इस अप्रत्याशित घटना से दहल गए और अनहोनी की आशंका से कांप उठे। चक्र ने बाहुबली की तीन परिक्रमा की और चरणों में गिर पड़ा।

चक्र के निष्प्रभ होने से भरत अवाक् रह गए। सभी उपस्थित जन भरत के इस बर्ताव से खेद खिन्न हो गए और

उसकी निन्दा करने लगे। छोटे भाई के प्रति बड़े भाई का यह बर्ताव किसी को भी अच्छा नहीं लगा। सभी बाहुबली की प्रशंसा कर उसकी जय- जयकार कर रहे थे और बाहुबली एक कौने में खड़े उदास भाव से सोच रहे थे – 'मुझसे बड़ा पाप हुआ है। मेरे द्वारा अकारण ही अग्रज भरत का अपमान हुआ है। मैं अब इस पाप का प्रायश्चित् कैसे करूँ।'

(11)

धर्मयुद्ध की शर्तों के अनुसार तो अब बाहुबली भरत का सारा राज्य ले सकते थे, परन्तु इस घटना से उनके मन में तो कुछ और ही उधेड़-बुन चल रही थी। एक ही क्षण में उनका मन संसार से विरक्त हो गया। वे सोचने लगे – 'हम दोनों भाई साथ-साथ खेले और बड़े हुए। साथ- साथ जीवन बिताया, आमोद-प्रमोद किया पर कभी कलुषता का भाव एक-दूसरे के प्रति नहीं रहा। परन्तु इस राज्य के मोह ने सब कुछ स्वाहा कर दिया। सारा देश जीतने पर भी अग्रज की लालसा समाप्त

नहीं हुई और अपने भाईयों का अधिकार छीनते हुए मुझे धोखे से मारने तक का षडयंत्र रच डाला। क्या यही धर्मनीति और राजनीति है। आखिर इस विशाल राज्य सम्पदा और वैभव का क्या होगा ? एक न एक दिन तो इसे छोड़कर जाना ही होगा।'

ऐसा विचार करते हुए वे अग्रज के चरणों में गिर पड़े और कहा – 'भाई ! मुझसे बड़ा अपराध हुआ है, मैं आपका अनुज हूँ, मुझे क्षमा कर दें। मुझे राज्य कोष कुछ भी नहीं चाहिए। यह सुख सम्पदा न तो किसी की रही है और न रहेगी। इस राजलक्ष्मी को अब तुम ही भोगो, मैं तो अब नग्न दिगम्बर दीक्षा लेकर अपना आत्म कल्याण करूँगा।

बाहुबली के वचन सुनकर भरत का क्रोध शान्त हो गया और वे पश्चाताप करने लगे। पराजय से तो वे वैसे ही टूट से चुके थे, क्रोध के वश होकर भाई पर चक्र का प्रहार करने की घटना ने उन्हें उद्वेलित कर दिया। गर्व तो चूर हो ही चुका था, आत्मग्लानि से वे पानी-पानी हो गये। अन्त में भाई के मुख से वैराग्य की बात सुनकर वे द्रवित हो गये और बाहुबली से अपने द्वारा किए गए निन्दनीय कार्य की क्षमा मांगने लगे।

भरत की आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। अब अपनी भूलों के लिए पश्चाताप के अतिरिक्त उनके पास बचा ही क्या था। वे बाहुबली को समझाने का अन्तिम प्रयास करते हुए कहते हैं – 'भैया ! मुझसे भारी भूल हुई है। मेरे कारण अन्य भाई पहले ही दीक्षा ले चुके हैं, अगर तुम भी

दीक्षा ले लोगे तो मेरा क्या होगा? मैं अकेला सम्राट नहीं रहना चाहता। तुम अपना विचार त्याग दो भैया ! हम दोनों आपस में मिलकर सुख से रहेंगे।'

(12)

भरत की नम आँखें बाहुबली से छुपी न रह सकीं। उनकी आँखों से भी झर-झर आँसू बह निकले। उन्होंने बड़े भाई को धैर्य धारण करने की सलाह दी और अपने पुत्र महाबली को राजपाट सौंपकर गृहत्याग कर दिया। अब तो एक ही धुन थी जिस पर वे बार-बार विचार कर रहे थे। वे सोच रहे थे –

'आत्मा का कार्य बार–बार संसार में जन्म लेना और मरना नहीं है। आत्मा को तो शीघ्र ही इस संसार परिभ्रमण से छुटकारा मिलना चाहिए। मनुष्य भव का मिलना अत्यन्त

कठिन है यदि उसे संसार के विषय भोगों में ऐसे ही गँवा दिया तो फिर अपना आत्म कल्याण कब और कैसे होगा ?' अतः अब वे अपने पिता ऋषभदेव के बताए पथ पर चल पड़े। उनके साथ बड़ी संख्या में लोगों ने जिनदीक्षा ले ली।

वन में पहुँचकर उन्होंने कठोर तप किया। वे एक वर्ष तक अचल होकर प्रतिमा की तरह खड़े रहे। नाशवान शरीर का मोह छोड़कर अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए अत्यन्त कठिन व्रत धारण कर मौन हो गये। एक वर्ष तक निराहार रहे, सर्दी-गर्मी- बरसात सभी कुछ सहन किया तथा आत्मलीन रहे। अब न तो किसी से मोह था और न ही किसी से ममता। अब तो बस आत्म शुद्धि हेतु निश्चल एक ही आसन में ध्यानमग्न थे। स्थिर तपलीन बाहुबली की देह पर पक्षियों ने घोंसले बना लिए थे, लतायें शरीर से लिपट गई थीं। जंगली पशु आपसी बैरभाव भूलकर यदा-कदा विचरण कर रहे थे। अनेक पशु बाहुबली के चरणों के समीप बैठे दिखाई देते थे। तप के प्रभाव से सभी जीव अहिसक हो

गये थे। सर्पों ने बामियां बना ली थीं, पशु पक्षियों के कलरव से जंगल गूँज रहा था।

(13)

कठोर तपश्चर्या करते हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया था, पर अभी तक बाहुबली को केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई, इससे सभी आश्चर्य चकित थे। सम्राट भरत ऋषभदेव के समवशरण में जाकर इसका कारण पूछते हैं तब उत्तर में ऋषभदेव ने कहा – 'बाहुबली के तप में कोई कलंक नहीं है, वह शुद्ध है साधना भी अत्यन्त कठिन है, परन्तु अभिमान उसकी जन्मजात प्रकृति है, वह किसी के विसात पर जीने वाला नहीं। वह तपस्या तो कर रहा है, परन्तु मन में यह पीड़ा भी है कि वह भरत की शासित भूमि पर खड़े हैं।' जब तक उनके मन से यह विकल्प नहीं हटेगा, केवलज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। तुम जाकर शीघ्र इसका समाधान करो तदुपरान्त उन्हें कैवल्य की प्राप्ति होगी।

चक्रवर्ती सम्राट भरत मुनिराज बाहुबली के दर्शनार्थ आए। बड़ी भक्ति भाव से उन्होंने पूजन की, परिक्रमा की और साष्टांग नमस्कार करते हुए कहा – 'यह राज्य मेरा नहीं है। आप यह विकल्प छोड़ दें कि मैं किसकी भूमि पर खड़ा हूँ। यह भूमि तो अब तक किसी की भी नहीं रही, न किसी के साथ जायेगी फिर आपके चित्त में दुविधा कैसी।

(14)

भरत के वचन सुनकर बाहुबली के मन से अभिमान का क्लेष तिरोहित हो जाता है। तपस्या में तल्लीन बाहुबली के हृदय से विभाव हट जाते हैं। अल्प समय में ही उन्हें कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है। देवतागण पुष्पवर्षा व दुदुंभि का नाद करने लगते हैं।

केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् बाहुबली ने अनेक देशों में घूमकर धर्मोपदेश दिया। लोगों को सार्थक जीवन का मर्म बताया। बाद में कैलाश पर्वत पर घोर तपश्चरण के उपरान्त प्रथम मोक्षगामी हुए।

अपने लघुभ्राता बाहुबली की कीर्ति को चिरस्थायी रखने के उद्देश्य से सम्राट भरत ने पोदनपुर में उनकी अति मनोज्ञ विशाल मूर्ति का निर्माण कराया। दूर-दूर से लोग आते और भक्तिभाव से उस मूर्ति के दर्शन कर अपने को भाग्यशाली मानते और भगवान बाहुबली के जीवन से शिक्षा ग्रहण करते। अब यह विशाल मूर्ति काल के गर्त में विलीन हो चुकी है।

श्रवणबेलगोला में स्थित भगवान बाहुबली की विश्व प्रसिद्ध 57 फुट ऊँची विलक्षण प्रतिमा को प्रतिष्ठापित कराने वाले महापुरुष चामुण्डराय थे जिनका जन्म दसवीं शताब्दि में हुआ था वे सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य तथा अजित गंगवंशी राजा के प्रमुख शिष्य थे। चामुण्डराय – मारसिंह, राजमल्ल तथा रक्कसगंग के मंत्री रहे हैं। उन्होंने 18 बार गंग राज्य को विजयश्री दिलाकर सेनापति के रूप में अभूतपूर्व सेवा, की जिसकारण 'समरकेशरी', 'सुभट चूणामणि' तथा 'वीर मार्तण्ड' जैसी उपाधियों से सुशोभित हुए।

एक बार की बात है नेमिचन्द्राचार्य षट्खण्डागम ग्रन्थ का अध्ययन कर रहे थे कि अचानक चामुण्डराय वहाँ पहुँच गए। उनके आते ही आचार्यश्री ने ग्रन्थ बन्द कर दिया इस पर चामुण्डराय ने ग्रन्थ बन्द करने का कारण पूछा। उत्तर में आचार्यश्री ने कहा ग्रन्थ

का विषय बहुत कठिन है। चामुण्डराय ने ग्रन्थ पढ़ने की जिज्ञासा प्रगट की तो आचार्य नेमिचन्द्र ने सरल भाषा में गोम्मटसार की रचना ही कर डाली और चामुण्डराय के ही बचपन के नाम गोम्मट पर ग्रन्थ का नाम गोम्मटसार रख दिया।

उन्हीं चामुण्डराय की माता काललादेवी ने आचार्य अजितसेन के मुख से पोदनपुर में भरत द्वारा स्थापित भगवान बाहुबली की 525 धनुष प्रमाण पन्ने की मूर्ति का वर्णन सुना

तो उनकी प्रबल इच्छा मूर्ति के दर्शन करने की हुई। उन्होंने प्रण किया कि जब तक मूर्ति के दर्शन नहीं कर लेती दूध ग्रहण नहीं करेंगी। चामुण्डराय को जैसे ही माता द्वारा नियम लेने का पता चलता है वह माता को भगवान बाहुबली की मूर्ति के दर्शन कराने ससंघ प्रस्थान करते हैं – जब यात्रा संघ कटवप्र पर्वत पर पहुँचता है तो वे ससंघ रात्रि विश्राम हेतु वहाँ रुक जाते हैं। यहाँ पर रात्रि के पिछले प्रहर में चामुण्डराय को स्वप्न में शासनदेवी कुष्माण्डिनी ने कहा –

'पोदनपुर की यात्रा व्यर्थ है चामुण्डराय तुम्हें अब वहाँ बाहुबली की मूर्ति के दर्शन हो पाना दुर्लभ है। मैं तुम्हारी मातृभक्ति से प्रसन्न हूँ। तुम इसी पहाड़ी से एक सोने का वाण छोड़ो वह जहाँ टकराएगा वहीं तुम्हें भगवान बाहुबली के दर्शन होंगे।'

प्रातःकाल चामुण्डराय ने स्वप्न की बात अपनी माता को बताई। माता को भी ऐसा ही स्वप्न दिखाई दिया था अतः माँ–बेटे दोनों स्वप्न का फल समझने के निमित्त गुरु के पास जाते हैं। गुरु ने भी ऐसा ही स्वप्न दिखने की बात उन दोनों को बताई। तीनों के हूबहू एक ही स्वप्न। आखिर गुरुदेव की आज्ञानुसार चामुण्डराय चन्द्रगिरि पर्वत से सोने का वाण छोड़ते हैं वह वाण विन्ध्यगिरि के शिखर पर एक विशाल शिला से टकराता है जिससे एक दिव्य रेखाचित्र भगवान बाहुबली का चामुण्डराय को दिखाई देता है। जिसके आधार पर भगवान बाहुबली की विशाल मूर्ति का निर्माण कराया जाता है।

चामुण्डराय राज्य के प्रधान शिल्पी अरिष्टनेमि को विशाल मूर्ति गढ़ने का आदेश देते हैं और बदले में प्रस्तर खण्ड के वजन की स्वर्ण मुद्राएं देने का वचन देते हैं। जितना-जितना प्रस्तर खण्ड छंटता जाता है उतने वजन की स्वर्ण मुद्रा शिल्पी अरिष्टनेमि को प्रदान की जाती है।

देखते ही देखते विशाल शिलाखण्ड 57 फुट ऊँची भगवान बाहुबली की मूर्ति का रूप ले लेता है। जो भी मूर्ति को निहारता है बस देखते ही रह जाता है। आचार्य नेमिचन्द्र के निर्देशानुसार चैत्र कृष्ण पंचमी को मूर्ति का भव्य पंचकल्याणक

प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किया गया। विशाल जनसमूह के समक्ष 1008 कलशों से मूर्ति का अभिषेक किया गया। इसप्रकार सन् 981 में भगवान बाहुबली की विशाल मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। इसी समय से प्रायः प्रत्येक 12 वर्ष बाद भगवान बाहुबली की इस मूर्ति का महा मस्तकाभिषेक राष्ट्रीय स्तर पर उत्साहपूर्वक आयोजित किया जाता है।

भगवान बाहुबली के तपोमय जीवन से प्रभावित होकर हजारों लोगों ने स्थान-स्थान पर श्रवणबेलगोल में स्थापित उक्त मूर्ति कर प्रतिकृति स्वरूप प्रतिमाएं स्थापित कीं हैं। तभी से भगवान बाहुबली की पूजा अर्चना की परम्परा प्रारम्भ हुई है।

भगवान बाहुबली की यह मूर्ति हमें त्याग का मार्ग अपनाकर सुख शान्ति से जीने की प्रेरणा देती है।